भारत के सांस्कृतिक अभ्युदय में प्राकृत का योगदान

□ डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल

संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का अपूर्व सम्मिलन अति पूर्वकाल में हुआ। ये दोनों भाषाएं भारतीय संस्कृति के अभ्युदय में समान रूप से अपना-अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भारतीय वाङ्मय के शिल्पियों ने इन भाषाओं का यथेच्छ प्रयोग किया है। उन्होंने इनके माध्यम से अपनी बहुमुख प्रतिभा के मणि-दर्पणों में भारत के ज्ञान-विज्ञान मुख को प्रतिबिंबित किया है। संस्कृत के साथ-साथ चलने वाली प्राकृत भाषा का क्षेत्र विशिष्ट विद्वानों तक ही सीमित नहीं रहा वरन् यह व्यापक क्षेत्र वाली लोकभाषा के रूप में अभिव्यक्त हुई। प्रजाओं की भाषा होने से इसे प्राकृत नाम दिया गया। 'प्रकृतौ भव: प्राकृत:'— जिसका प्रकृति से उद्भव है, वह प्राकृत है। इस अर्थ में प्रकरण-संगति के अनुसार जन-भारती को ही प्राकृत नाम मिला। इसका प्रसार लोक में जन-साधारण में था, यह बात जैनाचार्य के एक श्लोक से स्पष्ट हो जाती है—

बालस्त्रीमन्दमूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम्,
प्रतिबोधाय तत्वज्ञै: सिद्धान्त: प्राकृत: कृत: ॥

अर्थात् तत्त्वज्ञों ने चारित्र संबंधी उपदेश की इच्छा रखने वाले बालक, स्त्री, मन्दबुद्धि तथा मूर्खों के प्रतिबोध के लिए सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्राकृत में किया।' संस्कृत साहित्य के प्राचीन नाटकों में स्त्री, चेटी, भृत्य तथा इस कोटी के अन्य सामान्य पात्रों की भाषा प्राकृत मिलती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका आशय यही है कि जन साधारण की रुचि की रक्षा के लिए नाट्य मंच पर पात्रों के संवादों में संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत भाषा को स्थान देना उस समय में आवश्यक था। यदि विद्वद्-वर्ग को संस्कृत प्रिय थी, तो सामान्य जन को प्राकृत भाषा समान रूप से प्रिय थी। अतएव अपने अभिनेय रूपकों को प्रसिद्ध और लोकप्रिय बनाने के लिए ही संस्कृत के नाटककारों ने प्राकृत को अपने नाटकों में उचित स्थान दिया। लोक की साधारण व्यवहार की भाषा के प्रति प्राचीन नाट्य रचयिताओं का यह दृष्टिकोण सर्वथा समीचीन था। उन्होंने संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का समान रूप से प्रयोग करके अपने विशद भाषा ज्ञान का परिचय दिया है। वस्तुत: वह दोनों भाषाओं के व्याकरणों के मर्मज्ञ थे।

प्राकृत भाषा समृद्ध भाषा है। 'प्राकृत शब्दानुशासन' में प्राकृत की प्रशंसा करते हुए लिखा गया है कि—

अनल्पार्थः सुखोच्चारः शब्दः साहित्यजीवितम्।
स च प्राकृतमेवेति मतं सूत्रानुवर्तिनाम्॥'

अर्थात् 'साहित्य को संजीवन प्रदान करने के लिए ऐसे शब्दों की आवश्यकता है, जिनमें अर्थ बहुलता हो, उच्चारण सुखपूर्वक हो और इसके लिए प्राकृतभाषा ही उपयुक्त है।'

प्राकृत भाषा के सभी प्राचीन वैयाकरणों ने प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से मानी है। संस्कृत भाषा को ही आधार मानकर उन्होंने प्राकृत के ध्वनि-भेद आदि का विवरण दिया है। हेमचन्द्र आदि का यही विचार है—

प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवं तत् आगतं वा प्राकृतम्।

प्रकृति का अर्थ है—मूलभाषा संस्कृत, उससे उत्पन्न भाषा प्राकृत है। 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं प्राकृतमुच्यते' (प्राकृत-सर्वस्व) आदि अनेक कथनों से उपर्युक्त बात प्रमाणित होती है। इस प्रकार संस्कृत का ही विकृत रूप प्राकृत है। रूद्रट ने अपने 'काव्यालंकार' ग्रन्थ में 'तथा प्राकृतमेवापभ्रंशः' कहकर इसे प्राकृत और अपभ्रंश नाम दिये हैं। ईसा पूर्व तक संस्कृत जनभाषा और लोक व्यवहार की भाषा थी। इसके दो रूप थे—(१) साहित्यिक (२) जनभाषा। साहित्यिक भाषा में परिवर्तन बहुत कम होते थे, परन्तु जनभाषा वाली संस्कृत स्वाभाविक रूप से प्रचलित रही। इसमें ध्वनिभेद, शब्द-भेद आदि प्रचुर मात्रा में चलते रहे। जन भाषा में परिनिष्ठता नहीं थी। यही संस्कृत भाषा विकसित होते हुए प्राकृतों के रूप में प्रसिद्ध हुई। इसमें अनेक नवीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द विद्वानों द्वारा निर्मित हुए। इनको साहित्यिक भाषा में परिष्कृत करके समाविष्ट किया जाता है। इस प्रकार संस्कृत शब्दों का विकृतीकरण या सरलीकरण और विकृत शब्दों का संस्कृतीकरण निरन्तर चलता रहता है। भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र में यही मत प्रतिपादित किया है कि संस्कृत भाषा के शब्दों का ही विकृत एवं परिवर्तित रूप प्राकृत भाषा है—

एतदेव विपर्यस्तं संस्कार-गुण-वर्जितम्।
विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानाऽवस्थाऽन्तरात्मकम्॥

नाट्यशास्त्र १७-२

इसमे यह सिद्ध होता है कि प्राकृत भाषाएं संस्कृत की ही सीधी वंशज है जो स्थान और काल की दृष्टि से परिवर्तित और परिवर्धित होती रही है। दिक् और काल की दो प्रमुख अवस्थाओं के कारण उनमें विकास की जो अनेक प्रक्रियाएं हुई हैं, उन्होंने उनको संस्कृत से भिन्न बना दिया है। किन्तु प्राकृत भाषा संस्कृत भाषा की भांति ही भारत के सांस्कृतिक अभ्युदय में संलग्न रही है। इसका अनेकविध प्रयोग हुआ है, जैसे—

(i) धार्मिक ग्रन्थों में

(ii) साहित्यिक रचनाओं में

(iii) अभिलेखों में

धार्मिक प्राकृत जैन धार्मिक वाङ्मय में प्रयुक्त हुई है। इस भाषा वर्ग में महाराष्ट्री शौरसेनी, मागधी, आर्ष या अर्ध मागधी प्रमुख है। जैन शौरसेनी में रचित आचार्य कुन्दकुन्द का 'समयसार' इस भाषा में रचित सर्वाधिक प्राचीन एव बहुचर्चित कृति है। जैन शौरसेनी में दिगम्बर जैन धर्म संहिता की रचना हुई। श्वेताम्बर धर्म-संहिता की रचना अर्ध-मागधी में हुई।

साहित्यिक रचनाओं में प्राकृत का प्रयोग महाकाव्यों, गीतकाव्यों एवं कथा साहित्य में मिलता है। नाटकों में महाराष्ट्री, शौरसेनी मागधी और उनकी अनेक विधाएं प्रयुक्त हुई हैं। भास, अश्वघोष और कालिदास के नाटकों मे शौरसेनी, महाराष्ट्री प्राकृत आदि प्रयुक्त हुई हैं। संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त गद्य भागों में प्राकृत बोलियों के बीच शौरसेनी का प्रथम स्थान है। यह बहुशः स्त्रियों, बालकों, नपुंसकों, ज्योतिषियों की भाषा रही है। मागधी प्राकृत का भी संस्कृत नाटकों में प्रयोग हुआ है, जैसे 'मृच्छकटिकम्' में शकार उसके अनुचर स्थविरक, संवाहक, कुंभलिक, वर्धमानक, दोनों चाण्डालों और रोहसेन द्वारा बोली जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत नाटकों में प्राकृत बोलियों के प्रयोग की परम्परा निश्चित रूप से बहुत पुरानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है ।

निष्कर्ष यह है कि प्राकृत वाङ्मय का भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । इसमें संस्कृति के सन्देशहार सहस्रों ग्रन्थों की रचना हुई है । आज उनके अनुसन्धानमूलक अध्ययन से अनेक लुप्त-सुप्त शब्दों को पुनः प्रचलित करके वाङ्मय को विपुलता प्रदान की जा सकती है ।

प्राकृत और संस्कृत के सम्मिलन के दो उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं—

सम्पूर्ण जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमाः ।
गाङ्गवारि समस्त वारिनिवहः पुण्याः समस्ता क्रियाः ॥
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी ।
सर्वानस्थितिरस्य वस्तु विषया दृष्टं परब्रह्मणि ॥

आचार्य शंकर, धन्याष्टक, १०

अर्थ :— जिस भव्यात्मा ने परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है, उसके लिए समस्त विश्व आध्यात्मिक नन्दन वन है, सभी वृक्ष कल्पवृक्ष हैं, समस्त जलाशय गंगाजल से युक्त हैं, उसकी समस्त क्रियाएं पुण्यशील हैं । उसके लिए वाणी, प्राकृत हो अथवा संस्कृत हो, श्रुति सारभूत हैं । उसके लिए समस्त तीर्थक्षेत्र काशी-वाराणसी ही है । उसकी समस्त अवस्थिति एवं वस्तु विषया दृष्टि परमार्थमयी है ।

सरस्वती प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं की ज्ञाता हैं—

द्विधा प्रयुक्तेन च वाङ्मयेन, सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव ।
संस्कारपूर्तन वरं वरेण्यं, वधू सुख-ग्राह्य निबंधनेन ॥

महाकवि कालिदास रचित कुमार संभवम् ७/९०

अर्थ—सरस्वती ने (शिव व पार्वती) मिथुन की दो प्रकार के वाङ्मय द्वारा स्तुति की । देवी सरस्वती ने श्रेष्ठ वर की संस्कार से पवित्र संस्कृत भाषा में और वधू की सरलता से समझ में आने वाली प्राकृत-भाषा में स्तुति निबद्ध की या प्रस्तुत की ।

इस प्रकार बहुत प्राचीनकाल से ही प्राकृत और संस्कृत के सम्मिलन के प्रमाण साहित्य में विद्यमान हैं ।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शताब्दीनायक न्यायांभोनिधिश्रीविजयानन्दसूरि

श्री आत्मारामजी महाराज.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

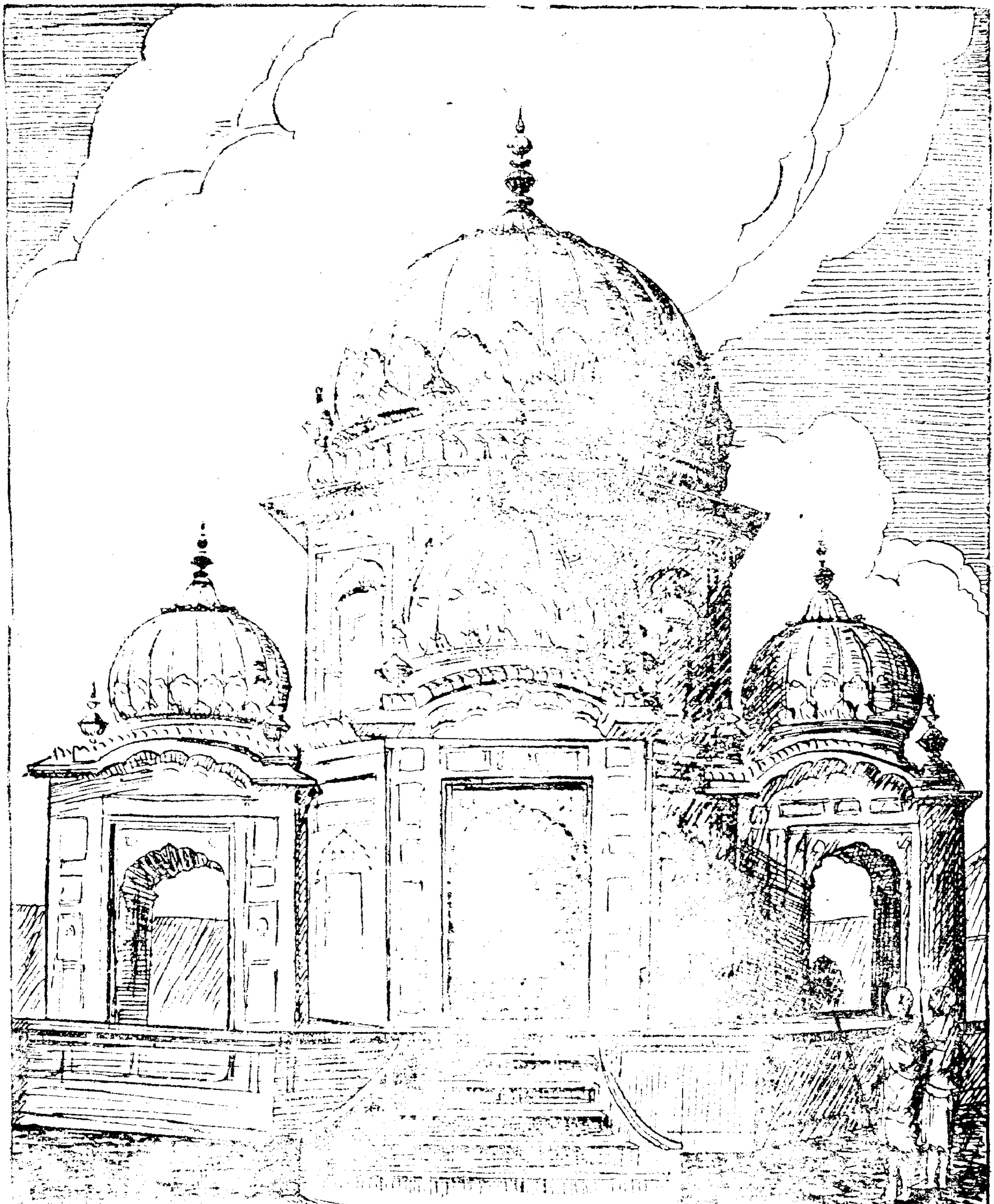

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org